

## अध्याय-2

## मानव स्वरूप का इतिहास

## ( 1 ) सामुदायिक इतिहास

उक्त प्रकार से आदि मानव ने एक स्थान अथवा देश में शरीर यात्रा प्रारंभ किया, या एक से अधिक देश अथवा स्थान में आरंभ किया - यह प्रश्न मानव को सोचने के लिए बाध्य करता है। इसका सत्य सहज उत्तर है कि आदिकाल में एक परिवार ने दूसरे परिवार को नस्ल के आधार पर पहचाना। यही पहली और ऐतिहासिक भूल या घटना हुई। आज हमें यह ज्ञात है कि नस्ल का आधार भौगोलिक, नैसर्गिक परिस्थितियाँ हैं। रंग का आधार भी भौगोलिक, नैसर्गिक परिस्थितियाँ हैं। पूजा व प्रार्थनाएँ कल्पनाशीलता के आधार पर निर्मित हुई। साधना का आधार श्रेष्ठता की अपेक्षा निष्ठा पर रहा। धर्म कहलाने वाले सभी प्रक्रियाएँ सामुदायिक शासन नियंत्रण और आश्वासन पर निर्भर रहीं। इसके लिए आज यही सोचा जा सकता है कि मानव की जागृति मानव के संबंध में नस्ल तक ही रही है। इसका प्रकाशन लड़ाई के रूप में हुआ। अर्थात् एक परिवार दूसरे परिवार को नस्ल, रंग के आधार पर क्रूर जीव-जंतु मानकर लड़ लिया। फलस्वरूप नस्ल के आधार पर समुदाय चेतना अर्थात् अपना पराया वाली सीमाएँ बनती रही। दूसरी बार भिन्न-भिन्न रंगों के मानव देखने को मिले। उसी के आधार पर एक दूसरे को मारकाट करने वाले मानकर झगड़ा कर लिया। फलस्वरूप परिवारों में अथवा समुदायों में भिन्न-भिन्न रंग और नस्ल की दीवालें पनपती आईं। इस प्रकार ये दोनों

(रंग और नस्ल) मान्यताएँ परंपरा में कटुता, द्रोह, विद्रोह प्रवृत्ति को पनपाती रही। तीसरी बार पुनः मानव को पूजा, अर्चना, योग, साधना, उपासना के आधार पर पहचानने की कोशिश हुई। यह भी पूर्ववर्ती दो प्रकार के भूलों जैसी ही हुई। मतभेद वाद-विवाद के आधार पर पहले जैसे ही द्रोह-विद्रोह होते रहे। चौथी बार पुनः वस्तु संग्रह, सुविधा और भोग के आधार पर एक दूसरे समुदायों को पहचानने की कोशिश हुई। इसमें द्रोह-विद्रोह के साथ शोषण भी प्रखरता से शामिल हो गया। युद्ध तो पहले से ही रहा। इस प्रकार मानव विविध समुदाय प्रेरणाओं से प्रेरित होकर ही एक दूसरे को नकारने-सकारने के तरीकों से समस्याओं को तौलता ही रहा। यह समुदाय चेतना का एक इतिहास है।

## ( 2 ) शिला व धातु युग:-

दूसरा इतिहास जंगल युग के शिला युग, शिला युग से धातुयुग, धातु युग से दास युग (आदर्शवादी विचार) तथा दास युग से संघर्ष युग जो आज वर्तमान है।

शिला और जंगल में मानव प्राकृतिक प्रकोप और क्रूर जानवरों से प्रधान रूप से भयभीत ही रहा। जैसे ही कबीला एवं ग्राम युग आया वैसे ही एक समुदाय दूसरे समुदाय से भयभीत होते रहा। जैसे ही दास युग आया वैसे ही ईश्वर, राजा और गुरु के प्रति नतमस्तक होने की परंपरा चली। राजा से प्रजा को सुख चैन का आश्वासन मिलते रहा। धर्म ग्रंथों, दर्शनों एवं विचारों के आधार पर पाप, अज्ञान, स्वार्थ से मुक्त होने के आश्वासन के आधार पर दास युग को स्वीकारा गया। इसके बावजूद

द्रोह-विद्रोह-युद्ध कहीं नहीं रुका। इसके उपरान्त जैसे ही भौतिकवादी युग विज्ञान और तकनीकी पूर्वक यंत्र प्रमाण सहित आया वैसे ही संघर्ष युग का लोकव्यापीकरण होना आरंभ हुआ। इस युग की मूलभूत बात - “सुविधा, संग्रह और भोग” है। फलस्वरूप पहले ग्राम-कबीले में मानव में निहित अमानवीयता का भय जितना रहा उससे कहीं अधिक दास युग में रहा। आज संघर्ष युग में मानव में निहित अमानवीयता का भय सर्वाधिक हो गया है। इसी के साथ प्राकृतिक भय और जीव भय इस युग में अन्य युगों की अपेक्षा कम हुआ है।

### ( 3 ) वैचारिक इतिहास

इतिहास का तीसरा चरण विचार धाराओं से शुरू होता है। यही अभी तक के प्राप्त विचारों के अनुसार ईश्वरवादी विचार है, जो प्रकारान्तर से तीन स्वरूप में मानव के सम्मुख है :-

1. अध्यात्मवाद
2. अधिदैवीवाद
3. अधिभौतिकवाद।

इन तीनों वादों को सम्मिलित रूप में आदर्शवाद नाम दिया गया है। आदर्शवाद का मूल प्रतिपादन रहस्यमूलक ईश्वर केन्द्रित चिंतन है। आदर्शवाद के अंतर्गत ऐसी रहस्यमयता को ज्ञान माना जाता है। अध्यात्मवाद वाले अध्यात्म ज्ञान को परम मानते हैं। अधिदैवीवाद वाले अधिदैवी ज्ञान को परम मानते हैं, जबकि ये सभी रहस्य हैं। इन तीनों वादों के अनुसार

ज्ञान को चेतना, व्यापक और सत्य बताया गया है। मूलतः ईश्वर का प्रतिपादन अथवा सत्य का प्रतिपादन रहस्य पर आधारित होने के कारण ईश्वर भी, सत्य भी, ज्ञान भी रहस्यमय रह गया। मानव में अज्ञात को ज्ञात करने की इच्छा बनी ही रही है। फलतः इन मुद्दों पर जितने भी वांङ्मय तैयार हुए वे सब वाद विवाद के चंगुल में फंसे गए। इसमें प्रमुख बात यह रही है कि अनेकानेक प्रबुद्ध ईमानदार लोग सच्ची साधना में समर्पित हुए। साधनाओं की विविधता बढ़ती रही। अतः मतभेद का अनेकानेक रूप में प्रचारित होना और प्रतिबद्धित होना, देखने को मिला। इन सबके अथक प्रयास के बावजूद मूल मुद्दा रहस्य ही रहते आया। ईश्वर के नाम से रहस्यमय महिमाओं का कथन हुआ। “ईश्वर को रिझाना ही मानव जीव का कल्याणकारी मार्ग है”- ऐसा बताया गया। इस कथन के साथ सभी अभ्यासी महापुरुष सहमत रहे। इस रहस्यवाद में अध्यात्म का आधार रहा है। इसी मूल आश्वासन के आधार पर ही अनेक लोग ईश्वर कृपा को पाकर अभिभूत अथवा तृप्त होने, समाधिस्थ होने, मौन होने अथवा बोधगम्य होने के लिए निष्ठापूर्वक प्रयत्न भी किये। ऐसे निष्ठावान तपस्वी, ऋषि, यति, सती, सन्त, मौनी महापुरुषों को सामान्य लोग यह भी मान लिये कि उन्हें ईश्वर कृपा हो चुकी। परम्परा में यह तथ्य देखने को मिलते रहा। फिर भी रहस्य ही रहता आया और अभी भी इसी प्रकार देखने को मिलता है।

इस बीच एक दूसरी विचारधारा आई, जिसको भौतिकवाद नाम दिया गया। जिसमें भौतिकता को कार्यकलाप के रूप में द्वंद्वात्मक होना प्रतिपादित किए। उसके मूल में अनिश्चय, अस्थिरता को माना गया। इस

प्रकार अस्थिरता एवं अनिश्चयमूलक भौतिकवादी वांङ्मय मानव को मिला, जो अपने प्रभाव के रूप में तर्क संगत विधि से लाभोन्माद, कामोन्माद, भोगोन्माद के रूप में प्रज्ज्वलित हुआ। ईश्वरवाद के अनुसार इन तीनों प्रवृत्तियों को दुखकारी और पाप मूलक बताया गया साथ ही स्वर्ग एवं भोग को स्वीकारा और स्वर्ग-नरक को बन्धन बताया। वहीं भौतिकवाद ने इन्हीं उन्मादों को सर्वोपरि स्वीकार किया। इन्हीं प्रवृत्तियों के समर्थन में राज्य और अर्थ-नीतियों को, प्रक्रियाओं को पद्धतियों को अध्ययन कराया। इसके आधार पर एक सुविधावादी व्यवस्था की परिकल्पना सामने आई जो भोगवाद का समर्थन ही रहा।

सुविधावादी व्यवस्था का विचार भौतिकवाद का प्रसंग हुआ। इसका प्रधान कार्यरूप मानव का संग्रह की ओर प्रवृत्त होना पाया गया है। उल्लेखनीय बात यह प्रमाणित हुई कि संग्रह का तृप्ति बिंदु, किसी भी स्थिति में व किसी भी मात्रा में देखने को नहीं मिला। इस प्रकार भौतिकवाद व्यवहार रूप में संग्रह के चक्कर में फँस गया और आदर्शवाद रहस्यमय ही रह गया। इस प्रकार दोनों विचारधाराओं द्वारा व्यवहार रूप में सार्थक सुन्दर समाधान पूर्ण और सुखद सार्वभौम व्यवस्था हाथ नहीं लगी। आज की रिक्तता यही है। पहले भी यही रिक्तता रही है।

#### ( 4 ) सांस्कृतिक इतिहास

प्रकारान्तर से संस्कृतियों के बारे में यह मान्यता है कि संस्कृति का आधार-

1. कपड़ों और अंलकारों की सजावट का विस्तार और उसके तरीके,

2. शादी-ब्याह के रीति रिवाज,
  3. संतान, अन्न व वस्तुओं की प्राप्ति के साथ उत्सव मनाने का तौर तरीका,
  4. कोई मर गया तो शोक संवेदनाओं को व्यक्त करने का तौर तरीका,
  5. नृत्य, गीत-संगीत घर-द्वार की सजावट व स्वागत का तरीका।
- प्रधानतः भक्ति और श्रृंगारिक प्रकृति सहज महिमाओं को आधार बनाकर व्यक्त किये हुए गीत, कविता, साहित्य, मूर्ति एवं चित्रों को संस्कृतियों का रूप मानते हुए समीक्षा करने पर शिलायुग से धातु युग, धातु युग से कबीला युग, कबीला युग से दास युग, दास युग से संघर्ष युग की संस्कृतियाँ, बेहतर से बेहतर मानी जा रही हैं।

#### ( 5 ) आर्थिक इतिहास

आर्थिक इतिहास का आधार मानव परंपरा में एक आयाम है। इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि अर्थ परंपरा में मानव कितना डूबते रहा और तैरते रहा। तीसरी विधि से ऐसा भी देख सकते हैं कि अर्थ के प्रति मानव कितना जागृत रहा या भ्रमित रहा। सबसे पहले जंगल में ( आदिकाल में ) जंगल को ही अर्थ मानता रहा। इसकी गवाही यही है कि आदि मानव जंगल में रहने तथा जंगल को खाने की वस्तुओं के रूप में पहचानते रहे हैं, चाहे शाकाहार करते रहे हों या मांसाहार। शिलायुग आने के उपरान्त

शिला और जंगल को उपयोगी वस्तु के रूप में पहचाना। मानव के लिए उपयोगिता का स्वरूप आहार, आवास रहा ही है और अलंकार क्रम में उपयोगिता को पहचानना स्वाभाविक रहा है। जंगल युग की अलंकार प्रणाली से शिलायुग में परिवर्तन हुआ। धातु युग में और परिवर्तन हुआ। यही तीन उपयोगिता का आधार आवश्यकता के रूप में होते आया।

सम्मान योग्य व्यक्ति की पहचान जंगल युग से ही प्रारंभ हुई। क्योंकि जंगल में रहते हुए वन्य प्राणियों से जूझना एक अनिवार्य स्थिति रही। इस कारण वंश या परिवार में से अथवा समुदाय में से जो व्यक्ति क्रूर प्राणियों की हत्या कर पाया ऐसे व्यक्तियों का समुदाय या परिवार ने सम्मान किया। जैसे-जैसे आवास, अलंकार और आहार संबंधी वस्तुओं को इकट्ठा करने की बात आई, इसके लिए विविध प्रकार के उपायों को सोचा गया तथा उसे क्रियान्वित किया गया। इस क्रम में जब मानव प्रवृत्त हुआ तो इनमें से जो अधिक एकत्रित कर पाया वह बड़े आदमी के नाम से पहचान में आया। इस प्रकार आदिमानव काल से बड़े आदमियों (सम्मान योग्य आदमी) की दो प्रजाति इस रूप में देखने को मिली।

आदर्शवाद के अनुसार पाप, अज्ञान, स्वार्थ दूर होने का आश्वासन जिनसे भी मिला उन्हें तीसरे प्रकार से बड़ा आदमी माना गया। इनको प्रायः गुरु के नाम से इंगित व संबोधित करते रहे। इसके पहले के दो प्रजाति के आदमी में से एक राजा के पद में आय गया जो बाहुबल और युद्ध का अधिकारी बना। दूसरा संग्रह करने वाला व्यापार कार्य में भाग लेने वाला बन गया। इस प्रकार से तीन स्वरूप में बड़े आदमी को

पहचानते आए।

इस बीसवीं शताब्दी के अंत तक भी उक्त तीनों प्रकार के आदमियों को बड़े मानते हैं। इन्हीं के आदर्श पर और भी बहुत सारे रूप में प्रदत्त बहुत सारी वस्तुएँ राजा के पास एकत्रित होती रहीं। राजा एवं गुरुजनों का सम्मान होते ही रहा। इसी के साथ राजाओं द्वारा अपहृत वस्तुएँ भी एकत्रित होती रही। बाहुबल के साथ राजाओं में योद्धाओं, युद्ध तंत्रों और समर साधनों के संयोग से बलपूर्वक अन्य देशों को अपने अधीन करने व वस्तुओं को लूटने की दुखद स्थिति आ गई। फलस्वरूप राजाओं के साथ संग्रह जुड़ता ही रहा और सम्मान यथावत् बना रहा। इसी के साथ व्यापारवाद लाभोन्मादी पराकाष्ठा में पहुँचने लगा। सर्वाधिक लोग इस दशक में व्यापार और नौकरी को वर्चस्वी कार्य मानने लगे हैं। इन दोनों से अधिक यदि किसी व्यक्ति के वर्चस्व को स्वीकारा जा रहा है तो वह हैं राजगद्दी में बैठा हुआ व्यक्ति अथवा बैठने योग्य व्यक्ति जो राजा का ही परिवर्तित रूप है। इस प्रकार वस्तु संग्रह के लिए तीन तबके सर्वाधिक आगे आए, वे हैं – राजगद्दी में बैठे हुए नेता या बैठने योग्य नेता, नौकरी करने वाले समुदाय और व्यापार करने वाले समुदाय। व्यापार कार्य को आज दो प्रकार से देखा जा रहा है –

1. उत्पादन विहीन व्यापार जो उपभोक्ता और उत्पादक के बीच होने वाला महत्वपूर्ण या गौरवशाली कार्य माना जाता है।
2. इससे अधिक गौरवशाली कार्य यदि आज मानते हैं तो वह है उत्पादन सहित व्यापार।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी में संग्रह करने वालों की संख्या बढ़ी। इनमें से जो राजगद्दी और व्यापार के द्वारा संग्रह करने में अभयस्त थे, वे भी इस प्रवाह के साथ हैं ही। इस क्रम में हर समुदाय राजगद्दी और धर्मगद्दी की निश्चित पहचान अपने-अपने रूप में रहती आयी। इन दोनों के बीच जो एकरूपता का सूत्र राजयुग अथवा दासयुग के प्रारंभ में स्थापित हुआ वह शनैः-शनैः परिवर्तित हो गया। आज राज्य और धर्म दोनों अलग-अलग पहचानने में आ गए हैं। इस परिवर्तन के लिए मानव मानस को जो सूत्र मिला है वह सब “संग्रहवादी प्रवृत्ति” है। आज तकनीकी और प्रौद्योगिकी की प्रधान भूमिका के कारण अत्याधिक उत्पादन हुआ है। अब यह भी सुनने में आ रहा है कि धर्म का लेन-देन या संबंध राज्य के साथ नहीं है; जबकि धार्मिक राजनीति के आरंभिक काल से ही, धर्म और राज्य एक-दूसरे के पूरक रहने की अपेक्षा बनी रही है अथवा ऐसा मान लिया गया था। दोनों में एकात्म संबंध माना गया था। विज्ञान युग के अनंतर आर्थिक राजनीति प्रभावशील हुई। आर्थिक राजनीति की पराकाष्ठा में ऐसी आवाज गूंजने लगी कि धर्म और राज्य के बीच संबंध नहीं है। इस सदी में सन् 1917 में साम्यवादी विचार के अनुसार धर्म विहीन राज्य व्यवस्था स्थापित हुई। पर सन् 1990 से साम्यवाद का उन्मूलन आरंभ हो गया। वहाँ पहले जैसे ही विविध धार्मिक आस्थाएँ पनपती हुई देखने को मिल रही हैं। इससे यह भी ज्ञानोदय होता है कि जब मानव अपने में सांत्वना एवं शांति चाहता है, प्रकारान्तर से धर्म का ही नाम याद आता है और आस्था का सूत्र ही उसका एकमात्र संबल होता है। आस्था की प्रेरणा आदर्शवाद से ही जनमानस में आई है। भय की तुलना में आस्था से आज

भी राहत सी मिलती है। इसी आधार पर आस्था के केन्द्र राजा, गुरु और ईश्वर रहे। गुरु और राजा का सम्मान होते आया। आज की स्थिति में राजकाज का ढंग देखकर जनमानस की आस्था इससे टूटती गई है। आस्था का आधार हैं रहस्यमय धर्म तथा रुचि के लिए उन्माद त्रय (लाभोन्माद, कामोन्माद भोगोन्माद)।

वर्तमान समय में व्यापारी और अधिकारी समयानुसार बदलते रहते हैं। कभी व्यापारियों के चंगुल में अधिकारी तो कभी अधिकारियों के चंगुल में व्यापारी-इस तालमेल को बैठाने के कार्यक्रम में लगे दिखाई देते हैं। सम्पूर्ण अधिकारी समुदाय इस समय प्रधानतः तीन भागों में बंटे दिखाई पड़ते हैं-

1. कार्यपालिका में प्रशासन कार्यतंत्र और सीमा सुरक्षा में,
2. न्यायपालिका में,
3. विधायिका में -सभी नेता विधायिका के कार्य में लगे हैं।

इन्हीं के साथ बहुत सारे विभाग समाहित हैं। हर विभाग में अधिकारी होता है। शिक्षा तंत्र भी एक विभाग है। यह कार्यपालिका के अंतर्गत कार्य करता है। आज सर्वाधिक अधिकारी वर्ग संग्रह कार्य में व्यस्त है। विधायिका राजनेताओं के हाथों में हैं और नेता जनादेश के आधार पर चुना जाता है जबकि राजा वंशानुगत होता था।

विधायिका एक बहुत बड़ा काम है। इसी की भागीदारी के लिए अथवा इसका कर्णधार होने के लिए नेताओं को आज आम आदमी ही

पहचानकर चुनता है। उल्लेखनीय बात तो यह है कि विधायिका को आम आदमी आज नहीं जानता। नेता लोग भी ठीक से नहीं जानते। इसका ज्ञान किसे हैं नेता को या जनता को, ऐसा देखने पर दोनों अज्ञानी मिलते हैं। क्योंकि संविधान पर प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। ऐसे विधायिका की नैय्या सम्हालने वाले विधानसभा, लोकसभा और राज्यसभा के जनप्रतिनिधि हैं। “जन प्रतिनिधित्व विधि से सम्प्रभुता वोट (मत) देते समय मानव गलती नहीं करता” – इसीलिए जनादेश सम्प्रभुता का द्योतक है। इसी मान्यता के आधार पर गणतांत्रिक व्यवस्था प्रारंभ हुई। जहाँ-जहाँ अभी भी राजा लोग हैं वहाँ-वहाँ विधायिका का स्वामी राजा को आज भी प्रधान माना जाता है। राजतंत्र के समय की मान्यता के अनुसार राजा स्वयं ईश्वर का प्रतिनिधि हैं। “राजा कभी गलती नहीं करता-इसीलिए सम्प्रभुता राजा का स्वरूप है” – ऐसी मान्यताएँ वंशानुगत उत्तराधिकार होने को मान लेती हैं। इस प्रकार जन प्रतिनिधि रूप में राजगद्दी का दावेदार अथवा राज परंपरा से आया हुआ राजा, राजगद्दी में बैठा होता है। इनके लिए आम जनता का सम्मान-गौरव अर्पित होते ही रहता है। हर समुदाय किसी न किसी राजगद्दी में अर्पित होता ही है, चाहे वह राजतांत्रिक राजगद्दी हो या गणतांत्रिक। अस्तु, इनमें यह चीज देखने को मिली कि संग्रह कार्य इनके लिए अत्यंत आसान हो जाता है।

इस विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला कि-

1. आदिकाल से अभी तक वस्तु संग्रह करने वाले व्यक्तियों का अनुपात बढ़ते गया।

2. शक्ति केन्द्रित शासन के अनुसार बंदूक, तोप, प्रक्षेपास्त्र, विस्फोट आदि वध-विध्वंश कार्यों का अधिकार संविधान विधि के अनुकूल प्रणालियों से राजा या नेता को प्रदत्त रहता है। इसे प्रत्येक शासन तंत्र में देखा जा सकता है। ऐसे शासन सम्मत अधिकार संपन्न व्यक्तियों के अतिरिक्त समर शक्तियों का उपयोग करना दूसरों के लिए अवैध माना गया है। इसीलिए ऐसे व्यक्ति ऐसे विध्वंशक कार्यों को करते हुए शासन तंत्र के कब्जे में न आ सकने की स्थिति में उग्रवादी, आतंकवादी आदि नामों से जाने जाते हैं। यह संघर्षवाद का एक स्पष्ट मूल्यांकन है।

शासन विधि, प्रणाली, प्रक्रियाओं से अधिकतर जनता उत्पीड़ित होते रही है, अभी भी उत्पीड़ित हो रही है। इससे छुटकारा पाने के लिए गणतंत्र प्रणाली को सोचा गया। इसके बावजूद उत्पीड़न अधिक प्रसन्नता कम है। इस प्रसन्नता और अप्रसन्नता का आधार वस्तु संग्रह होने या न होने की घटना पर आधारित है।

इसी तरह एक और समुदाय है जो हमें राजयुग से ही ईश्वर के प्रति आस्था, निष्ठा स्थापित करके क्लेश-मुक्ति के लिए उपदेश देते रहे। परोपकार, असंग्रह का उपदेश देते रहे हैं। ऐसे लोगों को हम गुरु, तपस्वी, संत, यति आदि मान कर सम्मान करते रहे हैं। आम जनता आस्थापूर्वक इनके लिए वस्तु अर्पित करती रही है। ऐसे लोगों को एक वर्ग के रूप में पहचाना जा सकता है। ऐसे महापुरुषों का अध्ययन करने पर पता लगता है कि इनमें से कुछ लोगों को वस्तु संग्रह करना आसान हो गया है अथवा

ये लोग वस्तुओं का संग्रह कर चुके हैं। पहले ये मेधावी व्यक्ति अपने तप, योग, अभ्यास, स्वाध्याय से, प्रभावशाली प्रवचनों और उपदेशों से, परोपकारी कार्यों से मनोकामना पूर्ण होने का आश्वासन देने में अग्रणी रहे। ये सब गौरव, सम्मान आदर के पात्र रहे हैं।

पहले चार समुदायों के संदर्भ में विश्लेषण पूर्वक उनकी स्थिति स्पष्ट की जा चुकी है। इनके अतिरिक्त लोगों को हम आम जनता कहते हैं। जिनमें पहले, आम जनता में से कुछ लोगों के पास सर्वकालीन उत्पादन कार्य हाथ में है। दूसरे कुछ लोगों के पास अर्धकालीन उत्पादन कार्य हाथ में हैं। तीसरे कुछ लोगों के पास अल्पकालीन उत्पादन कार्य हाथ में हैं। चौथे कुछ लोगों के पास कोई भी उत्पादन कार्य हाथ में नहीं है। इन चार स्वरूपों में दिखने वाली आम जनता में से उत्पादन कार्य शून्य समुदाय द्वारा अंशकालीन अर्धकालीन या पूर्णकालीन उत्पादन कार्य आज की तिथि में धनोपार्जन कार्य की ओर गतिशील होना पाया जा रहा है। इसी प्रकार अंशकालीन उत्पादन कार्य अथवा धनोपार्जन कार्य अथवा अर्धकालीन उत्पादन कार्य अथवा धनोपार्जन कार्य जिन जिन समुदायों के हाथ में हैं, वे पूर्णकालीन धनोपार्जन कार्य में व्यस्त होने के लिए गतिशील हैं। पूर्णकालीन उत्पादन कार्य अथवा धनोपार्जन कार्य जिनके पास हैं वे संग्रह कार्य में संलग्न होते दिखाई पड़ रहे हैं।

अभी तक के मानव के संपूर्ण इतिहास में अर्थोपार्जन और संग्रह एक प्रधान कार्य सा, लक्ष्य सा और उपलब्धि सा दिखाई पड़ता है। इसी आधार पर नेतृत्व करने वालों को देखने पर अभी तक राजनेता और

धर्मनेता ही मानव समाज में दृष्टिगोचर हुए हैं। इनकी सफलता और असफलता का आधार भी एक ही है, वह है वस्तु संग्रह। इस प्रकार सफल राजनेता वही हैं जो सर्वाधिक धन संग्रह करते हैं और आम जनता को कड़ी मेहनत का पाठ पढ़ाते हैं। इसी के साथ धन संग्रह न करने की सफाई प्रस्तुत करते ही रहते हैं। दूसरे जो धर्म नेता होते हैं वे भी अपार धन संग्रह करते हैं तो भी इन लोगों के प्रति संसार के आम लोगों की आस्था बनी रहती है। ये लोगों को त्याग और वैराग्य का पाठ पढ़ाते रहते हैं। स्वयं अपने को परोपकारी, त्यागी और असंग्रही घोषित करते रहते हैं।

## ( 6 ) राजनैतिक इतिहास

शक्ति केन्द्रित शासन के एकाधिकार, उसकी अक्षुण्णता को, उसकी एकता-अखण्डता और प्रभाव को “राज्य” माना। ऐसे एकाधिकार तत्व को पहचानने गए तब मूल में “ईश्वर ही सर्वशक्ति केन्द्रित सत्ता है”- ऐसा मान लिया गया। फलस्वरूप ईश्वर को सर्वशक्तिमान नाम भी दिया गया। जब ईश्वर को पहचानने जाने की बात आई, तब ईश्वर को मानव द्वारा पहचानना संभव नहीं हुआ क्योंकि मानव एक बहुत छोटी चीज और ईश्वर एक बहुत बड़ी चीज है। तब एक युक्ति निकल आई - वह यह कि ईश्वरीय महिमा अनुग्रह और निग्रह के रूप में है इसको हर व्यक्ति पहचान सकता है। इस प्रकार के आश्वासन को तत्कालीन विद्वानों ने तैयार किया। साथ ही लोक मानव में यह विश्वास भी स्थापित किया कि राजा ईश्वर का अवतार होता है और वह कभी गलती नहीं करता। इसी के साथ यह उपदेश भी दिया कि राजा, गुरु, ऋषि क्या करते हैं, यह मत

देखो ये क्या कहते हैं उनको सुनो, यह उपदेश का एक तरीका स्थापित किया। इसी के आधार पर पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक की परिकल्पना और कथाओं को बताया गया। पाप और नरक के प्रति भय और पुण्य व स्वर्ग के प्रति प्रलोभन स्थापित करने के लिए परिकथाएँ निर्मित हुईं। इसी आधार पर दान व परोपकार आदि के रूप में पुण्य करने के लिए उपदेश दिया गया। इसमें प्रधानतः ईश्वर को रिझाने के लिए सब पुण्य कर्म बताए गये जैसे - नमन करना, पूजा करना, प्रार्थना करना। हवा, पानी, धरती, सूरज, चाँद-तारे ये सब ईश्वर की महिमा हैं। इसलिए ये सब पूजा के योग्य हैं। इस प्रकार पूजा के लिए बहुत सारे आधार बनते गये। इसके आधार पर आम जनता को पुण्यार्जन का मार्ग दिखाया। पाप से मुक्ति ईश्वर कृपा से ही होने का आश्वासन दिया। राजा को ईश्वर का अवतार होना बताया गया। राजा का सम्मान और गौरव ईश्वर की पूजा है, ऐसा बताया गया। ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए राजाज्ञा का पालन करना भी पुण्य कर्मों में गण्य बताया गया। गुरु की आज्ञा, उपदेश का पालन, शिक्षा ग्रहण ये सब पुण्य के साक्षात् स्वरूप ही कहे गये। अर्थात् इन्हें पुण्य का प्रमाण माना गया। इस प्रकार से पुण्य के लिए बताये गये अथवा पुण्य मिलने के लिए जो तरीके बताये गए उसका पालन करने वाले को पुण्यात्मा मान लिया गया। इसके विपरीत जो कुछ भी किया उनको पापात्मा मान लिया गया। इसी के आधार पर धार्मिक दंडनीति तैयार हुई। पाप का दण्ड, दमन, प्रायश्चित्त बताए गए। धर्मार्जन कार्यों में लगे रहना ही सदाचरण माना गया। इसी क्रम में समुदाय गत कार्यकलापों के आधार पर जो-जो धर्म-कर्म करते रहे हैं उनके लिए पाप-पुण्य के आधार पर

सुधर्मों को बताया गया। इस प्रकार प्रत्येक संविधान में अर्थात् राज्यकाल में अर्थात् कबीला युग, ग्राम युग में अंतर्गत होने के समय में विभिन्न समुदायों के बीच में संविधान बने और स्थापित हुए। कुछ लिखित और कुछ अलिखित, दोनों प्रकार के संविधान चलते आये। ईश्वर राजा और गुरु के प्रति आस्था और निष्ठा स्थापित करना ही प्रधान कार्य रहा। पाप-पुण्य के आधार पर दण्ड और न्याय निर्णय करने का अधिकार राजा अथवा राजा से अधिकृत व्यक्तियों को रहा। इस क्रम में संविधानों में यह भी देखने को मिला बहिष्कार को भी एक दण्ड के रूप में प्रयोग किया गया। रहस्यमय पुण्य घटनाक्रम में दिखने वाले अपराधों के आधार पर धार्मिक राजनीति की स्थापनाएँ हुईं। ऐसी स्थापनाएँ इस धरती पर कई समुदायों के बीच हुईं। आज भी विभिन्न समुदायों के बीच भिन्नता सहित संविधानों का स्वरूप देखने को मिलता है।

धार्मिक राजनीति के काल में ही दास युग की स्थापना हुई। इसमें ईश्वर के प्रति दासता, गुरु के प्रति दासता और राजा के प्रति दासता को स्वीकारने की परम्परा बनी। इसी दासता को दूसरी भाषा में समर्पण कहा गया। उसके फलस्वरूप अधिकांश मानव जाति सशंकित, आतंकित रही।

क्रमागत विधि से मानव मानस के परिवर्तनों के आधार पर मानव से घटित होने वाली घटनाएँ बदलती भी रही। जैसे सत्ता परिवर्तन, वस्तु संचय का परिवर्तन, अपहरण, लूट, उपकार, द्रोह-विद्रोह, युद्ध, व्यापार, शिक्षा, व्यवस्था तंत्र, संस्कार तंत्र, विपन्नता से संपन्नता की ओर बढ़ने के क्रम में हर परिवार व हर व्यक्ति प्रयत्न करता ही आया।



अनुमानतः दो सौ वर्ष पूर्व विज्ञान युग या भौतिकवादी युग आरंभ हुआ। विज्ञान का विरोध धर्मतंत्र ने जमकर किया। अंततोगत्वा वैज्ञानिकों ने राजगद्दी को अपने पक्ष में कर लिया। इस आधार पर कि राजा को सदा ही युद्ध से जूझने की आवश्यकता पड़ी। धर्म के सहारे युद्ध भय से राहत मिलना संभव नहीं रहा। इसके विपरीत यह मान लिया गया कि धर्म का संरक्षण युद्ध में कुशल होने पर होगा। कुछ धर्म वाले अथवा कुछ धार्मिक राज्य वाले धर्म संरक्षण के लिए युद्ध को प्रधान कार्यक्रम मान लिये थे। इन्हीं आधारों पर तत्कालीन राजगद्दी वाले विज्ञान के द्वारा समर शक्ति पैनी होगी इस संभावना पर विश्वास किए। फलस्वरूप विज्ञान को राज्याश्रय मिलना आरंभ हुआ। आज भी सर्वाधिक समर शक्ति संपन्न देशों को ही विकसित देश मानते हैं। यही आज के मूल्यांकन का आधार है। इस जगह को आज विश्व संघ या राष्ट्रसंघ कह रहे हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आज तक मूल्यांकन किसी देश की समर शक्ति संपन्नता और वस्तु संग्रह के आधार पर ही किया जाता है।

राजनैतिक इतिहास में उल्लेखनीय बात यह है कि सबसे पहले ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानते हुए शक्ति केन्द्रित शासन की कल्पना दी गई। तत्कालीन तथाकथित ज्ञानियों, बुद्धिजीवियों से ऐसा ही करना बन पाया। इस परिकल्पना का मूल रूप “ईश्वर स्वयं रहस्य ही रहा।” ऐसी रहस्यमयी मान्यता का आधार केवल मानव की कल्पनाशीलता व कर्म स्वतंत्रता ही रही। रहस्यमय ईश्वर और मानव की कल्पनाशीलता के साथ आस्था सूत्र को मिलाकर सम्पूर्ण ताना-बाना बन गया। इससे मानव कुल दुविधाओं का सामना करता ही आया। दूसरा, जैसे ही विज्ञान युग

आया पुण्य से स्वर्ग में मिलने वाली वर्णित सभी प्रकार के पुण्य भोग गली-गली में, बाजारों में, प्रासादों में, भवनों में, झोपड़ियों में, मैदानों और सड़कों में खुले आम मिलने लगा। पहले से पुण्य भोग के रूप में भोग लिप्सा को पैदा किये ही थे। इस भूमिका को सभी प्रकार के धर्म ग्रन्थों ने पूरा कर लिया था; इसलिए इंतजार के बिना (अर्थात् मरने के बाद स्वर्ग में बढ़िया विविध भोग मिलेंगे तब तक इंतजार करो) तत्काल नगद मिलने वाले भोगों के प्रति लोक मानस लपककर उत्सुक हुआ। इसमें यह भी पहलू उभर आया कि जितनी बातों के लिए धार्मिक राजनीति में मना किया गया और उसे ‘पाप’ कहा गया जैसे चोरी-बदमाशी, लूट-खसोट, शोषण-संग्रह, इसी ‘पाप’ को करने वाले विज्ञान युग में सभी भोगों को नगद पा लिए।

आज की स्थिति यही है कि परस्पर सभी संबंधों में धन को प्रधान मान लिया गया। फलतः धन के लिए प्रयास देखा जा रहा है। यह भी देखने को मिला कि शुद्ध पानी व शुद्ध हवा के लिए भी पैसा चाहिए। इस प्रकार शरीर यात्रा के हर पहलू में पैसा प्रधान हो गया। फलस्वरूप सभी प्रकार के राजतंत्र आर्थिक राजनीति में अन्तर्गत हो गये।

इस संघर्ष युग में “धार्मिक राजनीति” का पराभव हुआ और “आर्थिक राजनीति” की पराकाष्ठा हुई। इसमें एक और निष्कर्ष निकल कर आता है कि इस आर्थिक राजनीति संघर्ष युग और गणतंत्र प्रणाली के चलते शासन की संभावनाएँ टूट चुकी हैं। शासन की बुनियाद रहस्यमय होने से, राजगद्दी में बैठे हुए व्यक्ति के रहस्योद्घाटन हो जाने से ईश्वर

स्वयं न तो किसी को मारने दौड़ता है न ही बचाने दौड़ता है - यह स्पष्ट हो जाने से तथा हर व्यक्ति संग्रह का उम्मीदवार होने से शासन की बुनियाद ही हिल चुकी है। अस्तु, इसका विकल्प समाधान युग का आरंभ होना है, जो स्वयं व्यवस्था के रूप में पल्लवित, पुष्पित व फलित होगा ही।

### ( 7 ) धार्मिक इतिहास

विगत के अवलोकन से यह पता चलता है कि राजगद्दी के साथ धर्मगद्दी और धर्मगद्दी के साथ राजगद्दी ओत-प्रोत रहे हैं तथा एक-दूसरे के साथ शासन और नीति के आधार पर तालमेल बनाये रखने के मौलिक प्रयास रहे हैं यह लिखित इतिहासों से स्पष्ट होता है। धर्म का मूल तत्व ईश्वर, आत्मा, ईश्वर वाक्य, ईश्वर आज्ञा हैं- ऐसा माना गया है। जबकि ईश्वर अभी तक रहस्यमय है अथवा रहस्य में छुपा हुआ है। ये सब ईश्वर आज्ञाएँ ईश्वरवाणी के रूप में, कितने ही मूल ग्रंथों में, पावन ग्रंथों में, कितने ही समुदायों में माना गया है। जितने भी प्रकार की ईश्वर वाणियाँ अनेकानेक ग्रंथों में हैं; वे सब एक रूप, एक अर्थ प्रतिपादित करने वाले नहीं हैं। इस कारण कोई पावन ग्रंथ सार्वभौम नहीं हो पाया। कोई भी ऐसा पावन ग्रंथ अध्यवसायिक विधि से अर्थात् रहस्य विहीन यथार्थता, सत्यता, वास्तविकता पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति सम्मत विधि से उसे अध्ययनगम्य नहीं करा पाया। पहले ही ईश्वर रहस्यमय रहा। रहस्य पर आधारित सभी पावन ग्रंथ एक-दूसरे से असहमत हुए। फलस्वरूप वाद विवाद हुआ जिसकी अंतिम परिणति झगड़ा और युद्ध के रूप में हुई। युद्ध के लिए राजाश्रय की आवश्यकता रहा। इस प्रकार पावन ग्रंथ रुपी धर्म-संविधान

भी वाद-विवाद का केन्द्र बना। हर आदमी किसी न किसी धर्म संविधान और राज्य संविधान में अर्पित होते ही आया। धर्म तथा राज्य संविधान भिन्न भिन्न रहे। इसका फल यही निकला कि हर व्यक्ति दूसरे किसी पावन ग्रंथ को अथवा धर्म संविधान को मानने वाले के साथ वाद विवाद करते रहा। यही एक मात्र धार्मिक कार्य हो गया। इस विधि से हर व्यक्ति अपने-पराये की दीवाल बनाने वाला शिल्पी हो गया।

फलस्वरूप सामान्य जन मानस अपने-पराये की मानसिकता के साथ जीने को बाध्य हुआ। इसी मानसिकता के साथ जब-तब दूसरे धर्म संविधानों को अनुसरण करने वालों के साथ झड़प होते ही रही। आदमी आदमी को मारने के लिए, वध करने के लिए अपने पराये के आधार पर मानसिकता को तैयार करते आया। आज भी इस प्रकार की घटनाएँ बारम्बार देखने को मिल रही हैं। इस अपने पराये की दीवाल बनाने के धंधे में सारा राज्य प्रबंध (संविधान), संपूर्ण पावन धर्म संविधान सिमट गया। अब एक ही धंधा सभी समुदायों के साथ बचा है वह है एक दूसरे समुदाय को कैसे मिटाए। इसके अलावा और कोई चिंतन मानव मानस में जीता जागता दिखता नहीं है। इसी के साथ संग्रह भी समाया है। विकसित देश की समीक्षा समर शक्ति के आधार पर ही विश्व स्तरीय संस्थाओं में हो चुकी है अब धर्म कहलाने वाले आधारों पर भी मारपीट ही एक मात्र कार्यक्रम रह गया है। इसके लिए भी बहुत सारा धन चाहिए ही। उसके लिए अनेक प्रकार से धन संचय करने का अनुसंधान भी कर लिया गया है। इस अनुसंधान की समीक्षा अर्थात् धन संचय की समीक्षा शोषण, द्रोह, लूट-खसोट की चौखट में स्पष्ट है। यह तो सिद्धांत ही है कि

किसी का शोषण किये बिना धन संचय नहीं होता। इस क्रम में मानव अपनी संपूर्ण शक्तियों अर्थात् कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता, विचारशीलता जैसी मौलिक शक्तियों को दाँव पर लगा चुका है। यह मौलिक इस प्रकार से है कि केवल मानव में ही कर्मस्वतंत्रता कल्पनाशीलता और विचारशीलता पाई जाती है। तथा प्रत्येक मानव व्यवहार प्रयोग में इसे प्रमाणित करता है। और किसी अवस्था में अर्थात् पदार्थावस्था, प्राणावस्था व जीवावस्था में ऐसे प्रयोग व्यवहार नहीं दिख पड़ते हैं। इसीलिए मानव में यह प्रमाणित होना मौलिक है। इस प्रमाण से मानव में अक्षय शक्ति का होना प्रमाणित होता है।

आर्थिक और राजनैतिक संचेतना के आधार पर मानव संघर्षशील है ही। धार्मिक चेतना अर्थात् धार्मिक ज्ञान अथवा धर्म कहलाने वाले ज्ञान कम से कम कल्पनाशीलता और विचारशीलता के रूप में कर्म स्वतंत्रता के आधार पर जितना और जैसा प्रमाणित होता है, उतने के आधार पर धर्म कहलाने वाले सभी मुद्दे संघर्ष में घिर आए। स्पष्ट भाषा में सभी प्रकार के धर्म कहलाने वाले सभी मुद्दे संघर्ष के गिरफ्त में हो गए। अर्थात् सभी प्रकार के धार्मिक कहलाने वाले मानव अथवा विविध प्रकार के धर्म का नाम लेने वाले मानव संघर्ष के लिए बाध्य हो गये। सभी धर्मों के मूल में प्रतिपादित पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक से आस्था घट गई। साथ ही संघर्ष और भोग लिप्सा प्रज्ज्वलित होती ही गई। इन्हीं कारणों से संघर्ष को अपनाया गया। आज की स्थिति में तथाकथित धर्म का डूबना एक अनिवार्य स्थिति बन चुकी है।

ध्यान देने का बात यह है कि व्यक्ति के रूप में प्रत्येक मानव

सुख शांति चाहता भी है और इसे कहता भी है। जब वही आदमी किसी तथाकथित धर्म, संप्रदाय, मत, पंथ, रुढ़ियों के आधार पर बात करता है तब “और अधिक संग्रह” और “भोगवादी कार्यकलाप” के संबंध में जब बोलता है, तब अपने-पराए की दीवाल बनाता ही है। सुख शांति के संबंध में कुछ भी बात करता है, कितनी भी बातें करता है, तब अपने - पराये की दीवाल नहीं बन पाता है। अपितु सुख शांति की अपेक्षा सभी मानवों में है, इसे स्वीकारता है। ऐतिहासिक विरोधाभास यही है कि सभी धर्म परंपराएँ सुख शांति को ध्यान में रखते हुए धर्म परंपराओं को आरंभ करती हैं। हर पावन ग्रंथ की यही मंशा है। इतना ही नहीं हर राज्य संविधान की मंशा भी यही है। किसी उस धर्म और राज्य के पक्ष में जिसमें वह समर्पित है जब आदमी बात करता है तब विरोधात्मक दीवाल चुनता ही है फलतः अपने पराये के भेद बन ही जाते हैं। जबकि व्यक्ति कोई पावन ग्रंथ नहीं है। सामान्य व्यक्ति के रूप में जब वह प्रस्तुत होता है तब उनको सुख शांति की आवश्यकता सभी मानवों में समान रूप में दिखाई पड़ती है। इससे स्पष्ट होता है कि धर्म ग्रंथों के प्रभाव के बिना जब मानव होता है तब उनकी कल्पनाशीलता और विचारशीलता विशालता की ओर दौड़ती दिखाई पड़ती है। वही व्यक्ति जब किसी धार्मिक ग्रंथ के दायरे में आ जाता है तब उसी व्यक्ति में पाई जाने वाली कल्पनाशीलता और विचारशीलता संकीर्ण होते हुए देखने को मिलती है। इस तथ्य के आधार पर विश्व मानव ऐसा एक सद्बुद्धि का प्रयोग कर सकता है मानव सहज अपेक्षा रुपी सुख शांति सबके लिए सुलभ हो ऐसा निश्चय कर सकता है। तब विविध समुदायों में मान्य, सभी पावन ग्रंथों को सार्वभौम लक्ष्य

के आधार पर पुनर्विचार कर सकता है।

सुख-शांति के प्रमाण हैं समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व। इस आधार पर सुख-शांति को पहचान सकते हैं और मूल्यांकन कर सकते हैं। इस विधि से देखें तब संभव है कि सब में एक सामरस्यात्मक सूत्र निकल जाये। यदि नहीं निकलता है तब अस्तित्व को परम शक्ति के रूप में स्वीकारते हुए- मानव चिंतन करने वाला है - सुख शांति को जानने मानने वाला है- यह स्वीकार करते हुए- अनुसंधान कर सकते हैं। ऐसा अनुसंधान मैंने किया है। इसी के आधार पर कि अस्तित्व परम सत्य है व मानव दृष्टा ज्ञाता व कर्ता-भोक्ता है। सह-अस्तित्व दर्शन और उसका अध्ययन सुलभ हो गया है। मानव, शरीर और जीवन के संयुक्त साकार रूप में है। जीवन का अध्ययन जीवन स्वयं करता है अर्थात् मानव करता है। जीवन ही जीवन का दृष्टा है, जीवन ही अस्तित्व में दृष्टा है और जीवन ही शरीर का दृष्टा है। इस तथ्य को जीवन ज्ञान से जानना मानना संभव हो गया है। इसलिए जीवन ज्ञान परम ज्ञान है। सह-अस्तित्व दर्शन ही परम दर्शन है। इन दोनों के योगफल में मानवत्व सहित मानव अपने में व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है- इसका प्रमाण हृदयंगम होता है। इसलिए मानवीयतापूर्ण आचरण ही परिपूर्ण आचरण हैं। यह अध्ययन सुलभ हो चुका है। इससे हम संघर्ष युग से समाधान युग में संक्रमित होने की सहज दिशा, मार्ग, प्रक्रिया, पद्धति, नीति और प्रणाली पा सकते हैं। सभी मानवों को इसे (मानवीयता) जानने, मानने और पहचानने का अधिकार है- यही इसे मानव में स्थापित करता है। इसका परीक्षण किया जा सकता है।

सह-अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान “मध्यस्थ दर्शन” के रूप में प्रस्तुत हैं। “अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व है” यह प्रतिपादित और विश्लेषित है, फलस्वरूप सह-अस्तित्ववाद अपने आप अभिव्यक्त और संप्रेषित हुआ है। सह-अस्तित्ववाद ही मानव वाद है। मानववाद ही मूलतः मानव में, से, के लिए सार्थक है और सहज है। मानव की सार्थकता व्यवहार में प्रणाणित होना ही सार्वभौमिकता का आधार है।

मानव मूलतः परिवार मानव हैं। अकेले में कोई कार्य और कार्य योजना नहीं बन पाती है। मानव के लिए मानव और मानवेतर प्रकृति नैसर्गिकता और वातावरण है। इतना ही नहीं, “अस्तित्व ही सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में सहअस्तित्व है और नित्य वर्तमान है।” इन्हीं तथ्यों के आधार पर समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद मानवकुल के लिए अर्पित हुआ है।

मानव सहज रूप में ही प्रयोग, व्यवहार और अनुभव रुपी प्रमाणों के साथ जीना चाहता है। सर्वतोमुखी समाधान पाना चाहता है अर्थात् विविध आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य, देशकाल में समाधान पाना चाहता है। इस आशय की पुष्टि प्रत्येक मानव में सभी देश काल में प्रकारान्तर से होती हैं। इसलिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के स्थान पर समाधानात्मक भौतिकवाद को मानव के सम्मुख प्रस्तावित किया। विश्वास है- मानव कुल अपनावेगा। इसे अपने ही स्वत्व के रूप में पहचानेगा, स्वीकारेगा और प्रयोजनशील हो जाएगा।

